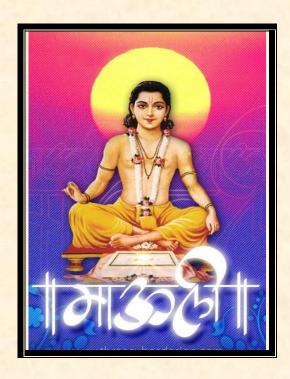
॥ श्रीहरि ॥ ॥ श्री भावार्थदीपिका ॥ ॥ अध्याय सातवा ॥

< (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)



() > 4 () >

हेचि आम्हां करणे काम । बीज वाढवावे नाम ॥

संतचरणरज बाळकृष्ण प्रकाश कदम जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

॥ अध्याय सातवा ॥ ॥ ज्ञानविज्ञानयोगः ॥

4\$>14\$>14\$>14\$>14\$>14\$>14\$>

श्रीभगवानुवाच । मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः । असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानिमदं वक्ष्याम्यशेषतः । यज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ञातव्यमविशष्यते ॥ २॥

आइका मग तो श्रीअनंतु । पार्थातें असे म्हणतु । पैं गा तूं योगयुक्तु । जालासि आतां ॥१ ॥ मज समग्रातें जाणसी ऐसें । आपुलिया तळहातींचें रत्न जैसें । तुज ज्ञान सांगेन तैसें । विज्ञानेंसीं ॥ २ ॥ एथ विज्ञानें काय करावें । ऐसें घेसी जरी मनोभावें । तरी पैं आधीं जाणावें । तेंचि लागे ॥ ३ ॥ मग ज्ञानाचिये वेळे । झांकती जाणिवेचे डोळे । जैसी तीरीं नाव न ढळे । टेकलीसांती ॥ ४ ॥ तैसी जाणीव जेथ न रिघे । विचार मागुता पाउलीं निघे । तर्कु आयणी नेघे । आंगीं जयांच्या ॥ ५ ॥ अर्जुना तया नांव ज्ञान । येर प्रपंचु हें विज्ञान । तेथ सत्यबुद्धि तें अज्ञान । हेंही जाण ॥ ६ ॥ आतां अज्ञान अवधें हरपे । विज्ञान निःशेष करपे । आणि ज्ञान तें स्वरूपें । होऊनि जाइजे ॥ ७ ॥ जेणें सांगतयाचें बोलणें खुंटे । ऐकतयाचें व्यसन तुटे ।

हें जाणणें सानें मोठें । उसों नेदी ॥ ८ ॥ ऐसें वर्म जें गूढ । तें किजेल वाक्यारूढ । जेणें थोडेन पुरे कोड । बहुत मनींचें ॥ ९ ॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतित सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३॥

> भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४॥

तरी अवधारीं गा धनंजया । हे महदादिक माझी माया । जैसी प्रतिबिंबे छाया । निजांगाची ॥ १५ ॥ आणि इयेतें प्रकृति म्हणिजे । जे अष्टधा भिन्न जाणिजे । लोकत्रय निपजे । इयेस्तव ॥ १६ ॥ हे अष्टधा भिन्न कैसी । ऐसा ध्विन धिरसी जरी मानसीं । तरी तेचि गा आतां पिरयेसीं । विवंचना ॥ १७ ॥ आप तेज गगन । मही मारुत मन । बुद्धि अहंकारु हे भिन्न । आठै भाग ॥ १८ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् । जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५॥

या आठांची जे साम्यावस्था । ते माझी परम प्रकृति पार्था । तिये नाम व्यवस्था । जीवु ऐसी ॥ १९ ॥ जे जडातें जीववी । चेतनेतें चेतवी । मना करवीं मानवी । शोक मोहो ॥ २० ॥ पैं बुद्धीच्या अंगीं जाणणें । तें जिये जवळिकेचें करणें । जिया अहंकाराचेनि विंदाणें । जगचि धरिजे ॥ २१ ॥

> एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६॥

ते सूक्ष्म प्रकृति कोडें । जैं स्थूळाचिया आंगा घडे ।
तैं भूतसृष्टीची पडे । टांकसाळ ॥ २२ ॥
चतुर्विध ठसा । उमटों लागे आपैसा ।
मोला तरी सरसा । परी थरिच आनान ॥ २३ ॥
होती चौयांशीं लक्ष थरा । येरा मिती नेणिजे भांडारा ।
भरे आदिशून्याचा गाभारा । नाणेयांसी ॥ २४ ॥
ऐसें एकतुके पांचभौतिक । पडती बहुवस टांक ।

मग तिये समृद्धीचे लेख । प्रकृतीचि धरी ॥ २५ ॥ जे आखूनि नाणें विस्तारी । पाठी तयाची आटणी करी । माजीं कर्माकर्माचिया व्यवहारीं । प्रवर्तु दावी ॥ २६ ॥ हें रूपक परी असो । सांगों उघड जैसें परियेसों । तरी नामरूपाचा अतिसो । प्रकृतीच कीजे ॥ २७ ॥ आणि प्रकृति तंव माझ्या ठायीं । बिंबे येथें आन नाहीं । म्हणौनि आदि मध्य अवसान पाहीं । जगासि मी ॥ २८ ॥

<</p>

<</p>

<

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय । मिय सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मिणगणा इव ॥ ७॥

हें रोहिणीचें जळ । तयाचें पाहतां येइजे मूळ । तैं रिश्म नव्हती केवळ । होय तें भानु ॥ २९ ॥ तयाचिपरी किरीटी । इया प्रकृती जालिये सृष्टी । जैं उपसंहरूनि कीजेल ठी । तैं मीचि आहें ॥ ३० ॥ ऐसें होय दिसे न दिसे । हें मजिच माजीं असे । मियां विश्व धरिजे जैसें । सूत्रें मणि ॥ ३१ ॥ सुवर्णाचे मणी केले । ते सोनियाचे सुतीं वोविले । तैसें म्यां जग धरिलें । सबाह्याभ्यंतरीं ॥ ३२ ॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः । प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ । जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९॥

म्हणौनि उदकीं रसु । कां पवनीं जो स्पर्शु । शशिसूर्यीं जो प्रकाशु । तो मीचि जाण ॥ ३३ ॥ तैसाचि नैसर्गिकु शुद्धु । मी पृथ्वीच्या ठायीं गंधु । गगनीं मी शब्दु । वेदीं प्रणवु ॥ ३४ ॥ नराच्या ठायीं नरत्व । जें अहंभाविये सत्त्व । तें पौरुष मी हें तत्त्व । बोलिजत असे ॥ ३५ ॥ अग्नि ऐसें आहाच । तेज नामाचें आहे कवच । तें परतें केलिया साच । निजतेज तें मी ॥ ३६ ॥ आणि नानाविध योनी । जन्मोनि भूतें त्रिभुवनीं । वर्तत आहाति जीवनीं । आपुलाल्या ॥ ३७ ॥ एकें पवनेंचि पिती । एकें तृणास्तव जिती । एकें अन्नाधारें राहती । जळें एकें ॥ ३८ ॥ ऐसें भूतांप्रति आनान । जें प्रकृतिवशें दिसे जीवन । तें आघवाठायीं अभिन्न । मीचि एक ॥ ३९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् । बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १०॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् । धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११॥

पैं आदिचेनि अवसरें । विरूढे गगनाचेनि अंकुरें । जे अंतीं गिळी अक्षरें । प्रणवपीठींचीं ॥ ४० ॥ जंव हा विश्वाकारु असे । तंव जें विश्वाचिसारिखें दिसे । मग महाप्रळयदशे । कैसेंही नव्हे ॥ ४१ ॥

ऐसें अनादि जें सहज । तें मी गा विश्वबीज । हें हातातळीं तुज । देइजत असे ॥ ४२ ॥ मग उघड करूनि पांडवा । जैं हे आणिसील सांख्याचिया गांवा । तैं ययाचा उपेगु बरवा । देखशील ॥ ४३ ॥ परी हे अप्रासंगिक आलाप । आतां असतु न बोलों संक्षेप । जाण तिपयांच्या ठायीं तप । तें रूप माझें ॥ ४४ ॥ बळियांमाजीं बळ । तें मी जाणें अढळ बुद्धिमंतीं केवळ । बुद्धि तें मी ॥ ४५ ॥ भूतांच्या ठायीं कामु । तो मी म्हणे आत्माराम् । जेणें अर्थास्तव धर्मु । थोरु होय ॥ ४६ ॥ ए-हवीं विकाराचेनि पैसे । करी कीर इंद्रियांचि ऐसें । परी धर्मासि वेखासें । जावों नेदी ॥ ४७ ॥ जो अप्रवृत्तीचा अव्हांटा । सांडूनि विधीचिया निघे वाटा । तेवींचि नियमाचा दिवटा । सर्वे चाले ॥ ४८ ॥ कामु ऐसिया वोजा प्रवर्ते । म्हणौनि धर्मासि होय पुरतें । मोक्षतीर्थींचे मुक्तें । संसार भोगी ॥ ४९ ॥ जो श्रुतिगौरवाच्या मांडवीं । काम सृष्टीचा वेलु वाढवी । जंव कर्मफळेंसि पालवी । अपवर्गीं टेंके ॥ ५० ॥ ऐसा नियुत कां कंदर्प । जो भूतां या बीजरूप । तो मी म्हणे बापु । योगियांचा ॥ ५१ ॥ हें एकेक किती सांगावें। आतां वस्तुजातचि आघवें। मजपासूनि जाणावें । विकारलें असे ॥ ५२ ॥

<</p>

<</p>

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये। मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मिय ॥ १२॥

जे सात्त्विक हन भाव । कां रजतमादि सर्व । तें ममरूपसंभव । वोळखें तूं ॥ ५३ ॥ हे जाले तरी माझ्या ठायीं । परी तयामाजीं मी नाहीं । जैसी स्वप्नींच्या डोहीं । जागृति न बुडे ॥ ५४ ॥ जैसी रसाचीच सुघट । बीजकणिका घनवट । परी तियेस्तव होय काष्ठ । अंकुरद्वारें ॥ ५५ ॥ मग तया काष्ठाच्या ठायीं । सांग पां बीजपण असे काई तैसा मी विकारीं नाहीं । जरी विकारला दिसे ॥ ५६ ॥ पैं गगनीं उपजे आभाळ । परी तेथ गगन नाहीं केवळ । अथवा आभाळीं होय सलिल । तेथ अभ्र नाहीं ॥ ५७ ॥ मग त्या उदकाचेनि आवेशें। प्रगटलें तेज जें लखलखीत दिसे । तिये विज्ञमाजीं असे । सलिल कायी ॥ ५८ ॥ सांगें अग्नीस्तव धूम होये । तिये धूमीं काय अग्नि आहे । तैसा विकार हा मी नोहें। जरी विकारला असे ॥ ५९ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् । मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३॥

परी उदकीं जाली बाबुळी । ते उदकातें जैसी झांकोळी । कां वायांचि आभाळीं । आकाश लोपे ॥ ६० ॥ हां गा स्वप्न लटिकें म्हणों ये । परि निद्रावशें बाणलें होये । तंव आठवु काय देत आहे । आपणपेयां ॥ ६१ ॥ हें असो डोळ्यांचे । डोळांचि पडळ रचे ।
तेणें देखणेंपण डोळ्यांचे । न गिळजे कायी ॥ ६२ ॥
तैसी हे माझीच बिंबली । त्रिगुणात्मक साउली ।
कीं मजिच आड वोडवली । जविनका जैसी ॥ ६३ ॥
म्हणौनि भूतें मातें नेणती । माझींच परी मी नव्हती ।
जैसी जळींचि जळीं न विरती । मुक्ताफळें ॥ ६४ ॥
पैं पृथ्वीयेचा घटु कीजे । सवेंचि पृथ्वीसि मिळे तरी मेळविजे
। ए-हवीं तोचि अग्निसंगें सिजे । तरी वेगळा होय ॥ ६५ ॥
तैसें भूतजात सर्व । हे माझेचि कीर अवयव ।
पिर मायायोगें जीव- । दशे आले ॥ ६६ ॥
म्हणौनि माझेचि मी नव्हती । माझेचि मज नोळखती ।
अहंममताभ्रांती । विषयांध जाले ॥ ६७ ॥

दैवी होषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४॥

आतां महदादि हे माझी माया । उतरोनियां धनंजया ।
 मी होईजे हें आया । कैसेनि ये ॥ ६८ ॥
जिये ब्रह्माचळाचा आधाडा । पहिलिया संकल्पजळाचा उभडा
। सर्वेचि महाभूतांचा बुडबुडा । साना आला ॥ ६९ ॥
जे सृष्टिविस्ताराचेनि वोघें । चढत काळकळनेचेनि वेगें ।
प्रवृत्तिनिवृत्तीचीं तुंगें । तटें सांडी ॥ ७० ॥
जे गुणघनाचेनि वृष्टिभरें । भरली मोहाचेनि महापूरें ।
घेऊनि जात नगरें । यमनियमांचीं ॥ ७१ ॥

जे द्वेषाच्या आवर्तीं दाटत । मत्सराचे वळसे पडत । माजीं प्रमादादि तळपत । महामीन ॥ ७२ ॥ जेथ प्रपंचाचीं वळणें । कर्माकर्मांचीं वोभाणें । वरी तरताती वोसाणें । सुखदुःखांचीं ॥ ७३ ॥ रतीचिया बेटा । आदळती कामाचिया लाटा । जेथ जीवफेन संघटा । सैंघ दिसे ॥ ७४ ॥ अहंकाराचिया चळिया । वरि मदत्रयाचिया उकळिया । जेथ विषयोमींच्या आकळिया । उल्लाळ घेती ॥ ७५ ॥ उदयास्ताचे लोंढे । पाडीत जन्ममरणाचे चोंढे । जेथ पांचभौतिक बुडबुडे । होती जाती ॥ ७६ ॥ सम्मोह विभ्रम मासे । गिळिताती धैर्याचीं आविसें । तेथ देव्हडे भोंवत वळसे । अज्ञानाचे ॥ ७७ ॥ भ्रांतीचेनि खडुळें । रेवले आस्थेचे अवगाळें । रजोगुणाचेनि खळाळें । स्वर्गु गाजे ॥ ७८ ॥ तमाचे धारसे वाड । सत्त्वाचें स्थिरपण जाड । किंबहुना हे दुवाड । मायानदी ॥ ७९ ॥ पें पुनरावृत्तीचेनि उभडें । झळंबती सत्यलोकींचे हुडे । घायें गडबडती धोंडे । ब्रह्मगोळकाचे ॥ ८० ॥ तया पाणियाचेनि वहिलेपणें । अझुनी न धरिती वोभाणें । ऐसा मायापूर हा कवणें । तरिजेल गा ॥ ८१ ॥ येथ एक नवलावो । जो जो कीजे तरणोपावो । तो तो अपावो । होय तें एक ॥ ८२ ॥ एक स्वयंबुद्धीच्या बाहीं । रिगाले तयांची शुद्धीचि नाहीं ।

एक जाणिवेचे डोहीं । गर्वेंचि गिळिले ॥ ८३ ॥ एकीं वेदत्रयाचिया सांगडी । घेतल्या अहंभावाचिया धोंडी । ते मदमीनाच्या तोंडीं । सगळेचि गेले ॥ ८४ ॥ एकीं वयसेचें जाड बांधले । मग मन्मथाचिये कांसे लागले । ते विषयमगरीं सांडिले । चघळूनियां ॥ ८५ ॥ आतां वार्धक्याच्या तरंगा- । माजीं मतिभ्रंशाचा जरंगा । तेणें कवळिजताती पैं गा । चहुंकडे ॥ ८६ ॥ आणि शोकाचा कडा उपडत । क्रोधाच्या आवर्तीं दाटत । आपदागिधीं चुंबिजत । उधवला ठायीं ॥ ८७ ॥ मग दु:खाचेनि बरबटें बोंबले । पाठीं मरणाचिये रेवे रेवले । ऐसे कामाचे कांसे लागले । ते गेले वायां ॥ ८८ ॥ एकीं यजनक्रियेची पेटी । बांधोनि घातली पोटीं । ते स्वर्गसुखाच्या कपाटीं । शिरकोनि ठेले ॥ ८९ ॥ एकीं मोक्षीं लागावयाचिया आशा । केला कर्मबाह्यांचा भरंवसा । परी ते पडिले वळसां । विधिनिषेधांच्या ॥ ९० ॥ जेथ वैराग्याची नाव न रिगे । विवेकाचा तागा न लगे । विर कांहीं तरों ये योगें । तरी विपाय तो ॥ ९१ ॥ ऐसें तरी जीवाचिये आंगवणें । इये मायानदीचें तरणें । हें कासयासारिखें बोलणें । म्हणावें पां ॥ ९२ ॥ जरी अपथ्यशीळा व्याधी । कळे साधूसी दुर्जनाची बुद्धी । कीं रागी सांडी रिद्धी । आली सांती ॥ ९३ ॥ जरी चोरां सभा दाटे । अथवा मीनां गळु घोटे । ना तरी भेडा उलटे । विवसी जरी ॥ ९४ ॥

<</p>

<</p>

<

पाडस वागुर करांडी । कां मुंगी मेरु वोलांडी । तरी मायेची पैलथडी । देखती जीव ॥ ९५ ॥ म्हणौनि गा पंडुसुता । जैसी सकामा न जिणवेचि वनिता । तेवीं मायामय हे सरिता । न तरवें जीवां ॥ ९६ ॥ येथ एकचि लीला तरले । जे सर्वभावें मज भजले । तयां ऐलीच थडी सरलें । मायाजळ ॥ ९७ ॥ जयां सद्गुरुतारूं फुडें। जे अनुभवाचे कांसे गाढे। जयां आत्मनिवेदन तरांडे । आकळलें ॥ ९८ ॥ जे अहंभावाचें वोझें सांडुनी । विकल्पाचिया झुळका चुकाउनी । अनुरागाचा निरुता हौनि । पाणिढाळु ॥ ९९ ॥ जया ऐक्याचिया उतारा । बोधाचा जोडला तारा । मग निवृत्तीचिया पैल तीरा । झेंपावले जे ॥ १०० ॥ ते उपरतीच्या वांवीं सेलत । सोऽहंभावाचेनि थावें पेलत । मग निघाले अनकळित । निवृत्तितटीं ॥ १०१ ॥ येणें उपायें मज भजले । ते हे माझी माया तरले । परि ऐसे भक्त विपाइले । बहुवस नाहीं ॥ १०२ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६॥

जे बहुतां एकां अव्हांतरु । अहंकाराचा भूतसंचारु । जाहला म्हणौनि विसरु । आत्मबोधाचा ॥ १०३ ॥ ते वेळीं नियमाचें वस्त्र नाठवे । पुढील अधोगतीची लाज नेणवे । आणि करिताति जें न करावें । वेदु म्हणे ॥ १०४ ॥ पाहें पां शरीराचिया गांवा । जयालागीं आले पांडवा । तो कार्यार्थु आघवा । सांडूनियां ॥ १०५ ॥ इंद्रियग्रामींचे राजिबदीं । अहंममतेचिया जल्पवादीं । विकारांतरांचि मांदीं । मेळवूनियां ॥ १०६ ॥ दु:खशोकांच्या घाईं । मारिलियाची सेचि नाहीं । हे सांगावया कारण काई । जे ग्रासिले माया ॥ १०७ ॥ म्हणौनि ते मातें चुकले । ऐका चतुर्विध मज भजले । जिहीं आत्मिहत केलें । वाढतें गा ॥ १०८ ॥ तो पहिला आर्तु म्हणिजे । दुसरा जिज्ञासु बोलिजे । तिजा अर्थार्थी जाणिजे । ज्ञानिया चौथा ॥ १०९ ॥

(2) > | (2) > (2)

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभिक्तिविशिष्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७॥

तथ आर्तु तो आर्तीचेनि व्याजें । जिज्ञासु तो जाणावयालागीं भजे । तिजेनि तेणें इच्छिजे । अर्थिसिद्धि ॥ ११० ॥ मग चौथियाच्या ठायीं । कांहींचि करणें नाहीं । म्हणौनि भक्तु एकु पाहीं । ज्ञानिया जो ॥ १११ ॥ जे तया ज्ञानाचेनि प्रकाशें । फिटलें भेदाभेदांचें कडवसें । मग मीचि जाहला समरसें । आणि भक्तुही तेवींचि ॥ ११२ ॥ परि आणिकांचिये दिठी नावेक । जैसा स्फटिकुचि आभासे उदक । तैसा ज्ञानी नव्हे कौतुक । सांगतां तो ॥ ११३ ॥

जैसा वारा कां गगनीं विरे । मग वारेपण वेगळें नुरे ।
तेवीं भक्त हे पैज न सरे । जरी ऐक्या आला ॥ ११४ ॥
जरी पवनु हालवूनि पाहिजे । तरी गगनावेगळा देखिजे ।
ए-हवीं गगन तो सहजें । असे जैसें ॥ ११५ ॥
तेसें शरीरीं हन कर्में । तो भक्तु ऐसा गमे ।
परी अंतरप्रतीतिधर्मे । मीचि जाहला ॥ ११६ ॥
आणि ज्ञानाचेनि उजिडलेपणें । मी आत्मा ऐसें तो जाणें ।
म्हणौनि मीही तैसेंचि म्हणें । उचंबळला सांता ॥ ११७ ॥
हां गा जीवापैलीकडिलीये खुणे । जो पावोनि वावरों जाणें ।
तो देहाचेनि वेगळेपणें । काय वेगळा होय ॥ ११८ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८॥

म्हणौनि आपुलाल्या हिताचेनि लोभें । मज आवडे तोहि भक्त झोंबे । परी मीचि करी वालभें । ऐसा ज्ञानिया एकु ॥११९॥ पाहें पां दुभतयाचिया आशा । जगचि धेनूसि करीतसे फांसा । परि दोरेंवीण कैसा । वत्साचा बळी ॥ १२० ॥ कां जे तनुमनुप्राणें । तें आणिक कांहींचि नेणें । देखे तयातें म्हणे । हे माय माझी ॥ २१ ॥ तें येणें मानें अनन्यगती । म्हणौनि धेनुही तैसीचि प्रीति । यालागीं लक्ष्मीपती । बोलिले साचें ॥ १२२ ॥ हें असो मग म्हणितलें । जे कां तुज सांगितलें । तेही भक्त भले । पढियंते आम्हां ॥ १२३ ॥ परि जाणोनियां मातें । जे पाहों विसरले मागौतें । जैसें सागरा येऊनि सरितें । मुरडावें ठेलें ॥ १२४ ॥ तैसी अंतःकरणकुहरीं जन्मली । जयाची प्रतीतिगंगा मज मीनली । तो मी हे काय बोली । फार करूं ॥ १२५ ॥ ए-हवीं ज्ञानिया जो म्हणिजे । तो चैतन्यचि केवळ माझें । हें न म्हणावें परि काय कीजे । न बोलणें बोलों ॥ १२६ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९॥

जे तो विषयांची दाट झाडी- । माजीं कामक्रोधांचीं सांकडीं । चुकावूनि आला पाडीं । सद्वासनेचिया ॥ १२७ ॥ मग साधुसंगें सुभटा । उजू सत्कर्माचिया वाटा । अप्रवृत्तीचा अव्हांटा । डावलूनि ॥ १२८ ॥ आणि जन्मशतांचा वाहतवणा । तेविंची आशेचिया न लेचि वाहणा । तेथ फलहेत्चा उगाणा । कवणु चाळी ॥ १२९ ॥ ऐसा शरीरसंयोगाचिये राती- । माजीं धांवतां सिडया आयती । तंव कर्मक्षयाची पाहाती । पाहांट जाली ॥ १३० ॥ तैसीच गुरुकृपा उखा उजळली । ज्ञानाची वोतपली पडली । तेथ साम्याची ऋद्धि उघडली । तयाचिये दिठी ॥ १३१ ॥ ते वेळीं जयाकडे वास पाहे । तेउता मीचि तया एक आहे । अथवा निवांत जरी राहे । तर्ही मीचि तया ॥ १३२ ॥ हें असो आणिक कांहीं। तया सर्वत्र मीवांचूनि नाहीं। जैसें सबाह्य जळ डोहीं । बुडालिया घटा ॥ १३३ ॥

तैसा तो मजभीतरीं । मी तया आंतुबाहेरी ।
हें सांगिजेल बोलवरी । तैसें नव्हे ॥ १३४ ॥
म्हणौनि असो हें इयापरी । तो देखे ज्ञानाची वाखारी ।
तेणें संसरलेनि करी । आपु विश्व ॥ १३५ ॥
हें समस्तही श्रीवासुदेवो । ऐसा प्रतीतिरसाचा वोतला भावो ।
म्हणौनि भक्तांमाजीं रावो । आणि ज्ञानिया तोचि ॥ १३६ ॥
जयाचिये प्रतीतीचा वाखारां । पवाडु होय चराचरा ।
तो महात्मा धनुर्धरा । दुर्लभु आथी ॥ १३७ ॥
येर बहुत जोडती किरीटी । जयांचीं भजनें भोगासाठीं ।
जे आशातिमिरें दृष्टी । विषयांध जाले ॥ १३८ ॥

कामैस्तैस्तैर्हज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः । तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २०॥

आणि फळाचिया हांवा । हृदयीं कामा जाला रिगावा । कीं तयाचिये घसणी दिवा । ज्ञानाचा गेला ॥ १३९ ॥ ऐसे उभयतां आंधारीं पडले । म्हणौनि पासींचि मातें चुकले । मग सर्वभावें अनुसरले । देवतांतरां ॥ १४० ॥ आधींच प्रकृतीचे पाइक । वरी भोगालागीं तंव रंक । मग तेणें लोलुपत्वें कौतुक । कैसेनि भजती ॥ १४९ ॥ कवणीं तिया नियमबुद्धि । कैसिया हन उपचारसमृद्धि । कां अर्पण यथाविधि । विहित करणें ॥ १४२ ॥

यो यो यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१॥

पैं जो जिये देवतांतरीं । भजावयाची चाड करी । तयाची ते चाड पुरी । पुरविता मी ॥ १४३ ॥ देवोदेवीं मीचि पाहीं । हाही निश्चयो त्यासि नाहीं । भावो ते ते ठायीं । वेगळा धरिती ॥ १४४ ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते । लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ २२॥

मग तिया श्रद्धायुक्त । तेथिंचें आराधन जें उचित । तें सिद्धिवरी समस्त । वर्तो लागे ॥ १४५ ॥ ऐसें जेणें जें भाविजे । तें फळ तेणें पाविजे । परी तेंही सकळ निपजे । मजिचस्तव ॥ १४६ ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् । देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३॥

परी ते भक्त मातें नेणती । जे कल्पनेबाहेरी न निघती ।
म्हणौनि कल्पित फळ पावती । अंतवंत ॥ १४७ ॥
किंबहुना ऐसें जें भजन । तें संसाराचेंचि साधन ।
येर फळभोग तो स्वप्न । नावभरी दिसे ॥ १४८ ॥
हें असो परौंते । मग हो कां आवडे तें ।
परी यजी जो देवतांतें । तो देवत्वासीचि ये ॥ १४९ ॥
येर तनुमनुप्राणी । जे अनुसरले माझेयाचि वाहणीं ।
ते देहाच्या निर्वाणीं । मीचि होती ॥ १५० ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः । परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४॥

<</p>

<</p>

<</p>

<</p>

परी तैसें न करिती प्राणिये । वायां आपुलिया हितीं वाणिये । जें पोहताती पाणियें । तळहातींचेनि ॥ १५१ ॥ नाना अमृताच्या सागरीं बुडिजे । मग तोंडा कां वज्रमिठी पाडिजे । आणि मनीं तरी आठविजे । थिल्लरोदकातें ॥१५२॥ हें ऐसें कासया करावें । जे अमृतींही रिगोनि मरावें । तें सुखें अमृत होऊनि कां नसावें । अमृतामाजीं ॥ १५३ ॥ तैसा फळहेतूचा पांजरा । सांडूनियां धनुर्धरा । कां प्रतीतिपाखीं चिदंबरा । गोसाविया नोहावें ॥ १५४ ॥ जेथ उंचावलेनि पवाडें । सुखाचा पैसारु जोडे । आपुलेनि सुरवाडें । उडों ये ऐसा ॥ १५५ ॥ तया उमपा माप कां सुवावें । मज अव्यक्ता व्यक्त कां मानावें । सिद्ध असतां कां निमावें । साधनवरी ॥ १५६ ॥ परी हा बोल आघवा । जरी विचारीजतसे पांडवा । तरी विशेषें या जीवां । न चोजवे गा ॥ १५७ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः । मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५॥

कां जे योगमायापडळें । हे जाले आहाति आंधळे । म्हणौनि प्रकाशाचेनि देहबळें । न देखती मातें ॥ १५८ ॥ ए-हवीं मी नसें ऐसें । काय वस्तुजात असे । पाहें पां कणव जळ रसें- । रहित आहे ॥ १५९ ॥

&><&><&><&><&><

पवनु कवणातें न शिवेचि । आकाश कें न समायेचि । हें असो एकु मीचि । विश्वीं आहें ॥ १६० ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६॥

येथें भूतें जियें अतीतलीं । तियें मीचि होऊनि ठेलीं । आणि वर्तत आहाति जेतुलीं । तींही मीचि ॥ १६१ ॥ कां भविष्यमाणें जियें हीं । तींहीं मजवेगळीं नाहीं । हा बोलचि ए-हवीं कांहीं । होय ना जाय ॥ १६२ ॥ दोराचिया सापासी । डोंबा बडिया ना गव्हाळा ऐसी । संख्या न करवे कोण्हासी । तेवीं भूतांसि मिथ्यत्वें ॥ १६३ ॥ मी ऐसा पंडुसुता । अनुस्यूतु सदा असतां । या संसार जो भूतां । तो आनें बोलें ॥ १६४ ॥ तरी तेचि आतां थोडीसी । गोठी सांगिजेल परियेसीं । जै अहंकारा तन्ंसीं । वालभ पडिलें ॥ १६५ ॥

इच्छाद्वेषसत्मृत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत । सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥ २७॥

तथ इच्छा हे कुमारी जाली । मग ते कामाचिया तारुण्या आली । तथ द्वेषेंसीं मांडिली । वर्हाडिक ॥ १६६ ॥ तया दोघांस्तव जन्मला । ऐसा द्वंद्वमोहो जाला । मग तो आजेयानें वाढिवला । अहंकारें ॥ १६७ ॥ जो धृतीसी सदां प्रतिकूळु । नियमाही नागवे सळु । आशारसें दोंदिलु । जाला सांता ॥ १६८ ॥ असंतुष्टीचिया मदिरा । मत्त होऊनि धनुर्धरा । विषयांचे वोवरां । विकृतीशीं ॥ १६९ ॥ तेणें भावशुद्धीचिये वाटे । विखुरले विकल्पाचे कांटे । मग चिरिलें आव्हांटे । अप्रवृत्तीचे ॥ १७० ॥ तेणें भूतें भांबावलीं । म्हणौनि संसाराचिया आडवामाजीं पडिलीं । मग महादु:खाच्या घेतलीं । दांडे वरी ॥ १७१ ॥

\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$P

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

ऐसे विकल्पाचे वांयाणे । कांटे देखोनि सणाणे । जे मतिभ्रमाचे पासवणें । घेतीचिना ॥ १७२ ॥ उजू एकनिष्ठेच्या पाउलीं । रगडूनि विकल्पाचिया भालीं । महापातकाची सांडिली । अटवीं जिहीं ॥ १७३ ॥ मग पुण्याचे धांवा घेतले । आणि माझी जवळीक पातले । किंबहुना चुकले । वाटवधेयां ॥ १७४ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये । ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९॥

ए-हवीं तरी पार्था । जन्ममरणाची निमे कथा । ऐसिया प्रयत्नातें आस्था । विये जयांची ॥ १७५ ॥ तयां तो प्रयत्नुचि एके वेळे । मग समग्र परब्रह्में फळे । जया पिकलेया रसु गळे । पूर्णतेचा ॥ १७६ ॥ ते वेळीं कृतकृत्यता जग भरे । तेथ अध्यात्माचें नवलपण पुरे
। कर्माचें काम सरे । विरमे मन ॥ १७७ ॥
ऐसा अध्यात्मलाभु तया । होय गा धनंजया ।
भांडवल जया । उद्यमीं मी ॥ १७८ ॥
तयातें साम्याचिये वाढी । ऐक्याची सांदे कुळवाडी ।
तेथ भेदाचिया दुबळवाडी । नेणिजे तया ॥ १७९ ॥

\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$PK\$P

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः । प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३०॥

ॐ तत्सिदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादो ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्याय: ॥७॥

जिहीं साधिभूता मातें । प्रतीतीचेनि हातें ।
धरूनि अधिदैवातें । शिवतले गा ॥ १८० ॥
जया जाणिवेचेनि वेगें । मी अधियज्ञ्ही दृष्टी रिगें ।
ते तनूचेनि वियोगें । विर्हये नव्हती ॥ १८१ ॥
ए-हवीं आयुष्याचें सूत्र विघडतां । भूतांची उमटे खडाडता ।
काय न मरतयाचियाहि चित्ता । युगांतु नोहे ॥ १८२ ॥
परी नेणों कैसे पैं गा । जे जडोनि गेले माझिया आंगा ।
ते प्रयाणींचिया लगबगा । न सांडितीच मातें ॥ १८३ ॥
एर्हवी तरीं जाण । ऐसे जे निपुण ।
तेचि अंतःकरण- । युक्त योगी ॥ १८४ ॥
तंव इये शब्दकुपिकेतळीं । नोडवेचि अवधानाची अंजुळी ।

जे नावेक अर्जुन तये वेळीं । मागांचि होता ॥ १८५ ॥ जेथ तद्ब्रह्मवाक्यफळें । जिये नानार्थरसें रसाळें । बहकताती परिमळें । भावाचेनि ॥ १८६ ॥ सहज कृपामंदानिळं । कृष्णदुमाची वचनफळं । अर्जुन श्रवणाचिये खोळे । अवचित पडिलीं ॥ १८७ ॥ तियें प्रमेयाची हो कां वळलीं । कीं ब्रह्मरसाच्या सागरीं चुबुकळिलीं । मग तैसीचि कां घोळिलीं । परमानंदें ॥१८८॥ तेणें बरवेपणें निर्मळें । अर्जुना उन्मेषाचे डोहळे । घेताति गळाळे । विस्मयामृताचे ॥ १८९ ॥ तिया सुखसंपत्ती जोडलिया । मग स्वर्गा वाती वांकुलिया । हृदयाच्या जीवीं गुतकुलिया । होत आहाती ॥ १९० ॥ ऐसें वरचिलीचि बरवा । सुख जावों लागलें फावा । तंव रसस्वादाचिया हांवा । लाहो केला ॥ १९१ ॥ झडकरी अनुमानाचेनि करतळें । घेऊनि तियें वाक्यफळें । प्रतीतिमुखीं एके वेळे । घालूं पाहे ॥ १९२ ॥ तंव विचाराचिया रसना न दाटती । परी हेतूच्या दशनीं न फुटती । ऐसें जाणौनि सुभद्रापती । चुंबिचिना ॥ १९३ ॥ मग चमत्कारला म्हणे । इयें जळींचीं मा तारांगणें । कैसा झकविलों असलगपणें । अक्षरांचेनि ॥ १९४ ॥ इयें पदें नव्हती फुडिया । गगनाचिया घडिया । येथ आमुची मित बुडालिया । थावो न निघे ॥ १९५ ॥ वांचूनि जाणावयाची कें गोठी । ऐसें जीवीं कल्पूनि किरीटी । तिया पुनरिप केली दृष्टी । यादवेंद्रा ॥ १९६ ॥

मग विनविलें सुभटें । हां हो जी ये एकवाटे । सातही पदें अनुच्छिष्टें । नवलें आहाती ॥ १९७ ॥ ए-हवीं अवधानाचेनि वहिलेपणें । नाना प्रमेयांचें उगाणें । काय श्रवणाचेनि आंगवणें । बोंलों लाहाती ॥ १९८ ॥ परी तैसें हें नोहेचि देवा । देखिला अक्षरांचा मेळावा । आणि विस्मयाचिया जीवा । विस्मयो जाला ॥ १९९ ॥ कानाचेनि गवाक्षद्वारें । बोलाचे रश्मी अभ्यंतरें । पाहेना तंव चमत्कारें । अवधान ठकलें ॥ २०० ॥ तेवींचि अर्थाची चाड मज आहे । तें सांगतांही वेळु न साहे । म्हणौनि निरूपण लवलाहें । कीजो देवा ॥ २०१ ॥ ऐसा मागील पडताळा घेउनी । पुढां अभिप्राय दृष्टी सूनी । तेवींचि माजीं शिरौनी । आर्ती आपुली ॥ २०२ ॥ कैसी पुसती पाहें पां जाणिव । भिडेचि तरी लंघों नेदीं शिव । ए-हवीं श्रीकृष्ण हृदयासि खेंव । देवों सरला ॥ २०३ ॥ अहो श्रीगुरूतें जैं पुसावें । तैं येणें मानें सावध होआवें । हें एकचि जाणें आघवें । सव्यसाची ॥ २०४ ॥ आतां तयाचें तें प्रश्न करणें । वरी सर्वज्ञ श्रीहरीचें बोलणें । संजयो आवडलेपणें । सांगैल कैसें ॥ २०५ ॥ तिये अवधान द्यावें गोठी । बोलिजेल नीट मर्हाटी । जैसी कानाचे आधीं दिठी । उपेगा जाये ॥ २०६ ॥ बुद्धीचिया जिभा । बोलाचा न चाखतां गाभा । अक्षरांचिया भांबा । इंद्रियें जिती ॥ २०७ ॥ पहा पां मालतीचे कळे । घ्राणासि कीर वाटले परिमळें ।

⟨₽⟩<</p>

परि वरिचला बरवा काइ डोळे । सुखिये नव्हती ॥ २०८ ॥ तैसें देशियेचिया हवावा । इंद्रियें करिती राणिवा । मग प्रमेयाचिया गांवा । लेसां जाइजे ॥ २०९ ॥ ऐसेनि नागरपणें । बोलु निमे तें बोलणें । ऐका ज्ञानदेवो म्हणे । निवृत्तीचा ॥ २१० ॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां सप्तमोध्यायः ॥

॥ रामकृष्णहरि ॥

सेवाभावी संतचरणरज

बाळकृष्ण प्रकाश कदम

जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर
(इतर PDF ग्रंथासाठी संपर्क - ९७६५६५३८०५)
